पूज्य लालचंदभाई के प्रवचन
श्री समयसार कलश २७१
प्रवच रत्नाकर भाग ११, पृष्ट ५७१-५७७
राजकोट, सितंबर-अक्टूबर १९९०
प्रवचन LA ३९७

श्री समयसार परमागम शास्त्र, उसका अंतिम परिशिष्ट नाम का अधिकार, कलश नं. २७१। उसके ऊपर पूज्य गुरुदेव श्री का प्रवचन । इस प्रवचन पर स्पष्टीकरण चल रहा है। प्रवचन पुस्तिका नंबर-९, आठवें पृष्ठ से अंतिम है, पृष्ठ आठवाँ अंतिम पंक्ति आधी।

इसलिये जानने की क्रिया ही ज्ञान के द्वारा, आत्मा के द्वारा ज्ञात होती है। आत्मा जानता है और आत्मा के द्वारा क्या जानने में आता है? छह द्रव्य जानने में आते हैं? या पाँच महाव्रत के परिणाम जानने में आते हैं? या व्यवहार रत्नत्रय के परिणाम जानने में आते हैं? या राग जानने में आता है? जानने में क्या आता है? **इसलिये जानने की क्रिया ही** इस तरह। **जानने की क्रिया** जो होती है कि जिस क्रिया में आत्मा जानने में आता है, हों! उसका नाम ज्ञानक्रिया है। अर्थात् ज्ञान में, जिस क्रिया में आत्मा जानने में आ रहा है, ऐसी जो **जानने की क्रिया ही ज्ञान के द्वारा ,** अर्थात् कि**आत्मा के द्वारा जानने में आती है।** अपनी ज्ञान क्रिया ही ज्ञान के द्वारा यानी कि आत्मा के द्वारा जानने में आती है। इस आत्मा का ज्ञेय क्या है? परपदार्थ ज्ञेय नहीं हैं । राग ज्ञेय नहीं है। दया, दान के परिणाम वास्तव में ज्ञेय नहीं हैं । तो उसका ज्ञेय क्या ? क्योंकि ज्ञान है तो ज्ञेय होता ही है। ज्ञान है तो उसका कोई ज्ञेय तो होता ही है। ज्ञेय के बिना ज्ञान नहीं होता । तो ज्ञान तो प्रकट होता है, हुआ। तो कहते हैं उसमें ज्ञेय क्या ? कि जो जानने की क्रिया हुई न वह जानने में आती है । ज्ञान द्वारा अर्थात् आत्मा द्वारा, आत्मा द्वारा आत्मा को जानने वाली जो ज्ञान की क्रिया वह ज्ञेयपने जानने में आती है । अन्य कुछ ज्ञेयपने जानने में नहीं आता, आहाहा!

कर्मरूप से तो अन्य कुछ जानने में नहीं आता , परन्तु अन्य(वस्तु) ज्ञेयपने भी जानने में नहीं आती । राग मेरा कर्म और मैं कर्ता ऐसा तो है ही नहीं परन्तु राग ज्ञेयपने जानने में नहीं आता । जानने की क्रिया ज्ञान द्वारा अर्थात् आत्मा द्वारा जानने में आती है, आहाहा! आत्मा ज्ञाता हुआ और आत्मा की जानने की ज्ञान क्रिया वह ज्ञेय हो गई। आत्मा ज्ञाता और जानने की क्रिया ज्ञेय. क्या जानने में आता है तुम्हें आत्मा में ? कि मेरी आत्मा को जो प्रसिद्ध करती है ऐसी जो ज्ञान क्रिया वह मुझे जानने में आती है।

ये प्रवीण भाई हैं, बेंगलोर रहते हैं और सोनगढ़ में बंगला बनाया है, रहते हैं, अक्सर आते हैं वहाँ।

आठवें पन्ने की अंतिम; आठवें पन्ने की अंतिम आधी पंक्ति। **इसलिये जानने की क्रिया ही** इस तरह! जिस ज्ञान की क्रिया में आत्मा जानने में आता है ऐसी जो ज्ञान की क्रिया हो रही है मेरे में-मुझे,

तो कहते हैं **जानने की क्रिया ही ज्ञान के द्वारा ,** ज्ञान के द्वारा अर्थात् आत्मा के द्वारा, **आत्मा के द्वारा जानने में आती है।** मैं जाननेवाला हूँ। तो जाननेवाला हूँ, मेरे पास ज्ञान है तो कुछ जानने योग्य जानने में तो आयेगा ना ? कि क्या जानने में आता है? छह द्रव्य? कि नहीं। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र? कि नहीं। जिनेन्द्र भगवान की दिव्यध्वनि जानने में आती है? कि नहीं। तीर्थंकर भगवान का समोशरण जानने में आता है? कि नहीं। तीर्थंकर भगवान जानने में आते हैं? कि नहीं। उनकी दिव्यध्वनि जानने में आती है? कि नहीं। आहाहा! तो उनके प्रति जो अहोभाव शुभभाव-राग आया वह जानने में आता है? कि नहीं। वह मेरे ज्ञान का ज्ञेय नहीं है , आहाहा! तब क्या जानने में आता है? कि आत्मा के द्वारा आत्मा का ज्ञान जानने में आता है। आत्मा के द्वारा आत्मा का ज्ञान जानने में आता है। आत्मा ज्ञाता है और जो जानने में आती है ज्ञान की पर्याय-क्रिया वह ज्ञेय है। ज्ञाता और ज्ञेय का इतना भेद करूँ तो (भेद) है। परन्तु मैं जो एकाग्र हो जाऊं तो इतना भेद भी नहीं है।

मुमुक्षु :- अभेद।

उत्तरः- आहाहा! अमृत है यह वचन तो। जरा इसे धैर्य से खोलकर, पक्षपात रहित होकर गुरु क्या कहते हैं? तू गुरु को समझने की कोशिश कर। गुरु समझ में आयेंगे तो आत्मा समझ में आयेगा। गुरु की वाणी का मर्म समझ में नहीं आए (तो आत्मा नहीं समझ में आयेगा)।

मुमुक्षुः- तब तक आत्मा समझ में नहीं आयेगा।

उत्तरः- (तो) आत्मा समझ में नहीं आयेगा। अनुभवी को समझने का प्रयत्न करना चाहिये तो (स्वयं) अनुभवी हो जाता है। (जो) अनुभवी जीव होते हैं उन्हें समझने का जो जीव प्रयत्न करेगा, वह अनुभवी बन जायेगा। यह अनुभवी लिखते हैं। हें? टेप है यह रही देखो!

इसलिये जानने की क्रिया ही ज्ञान के द्वारा, अर्थात् **आत्मा के द्वारा जानने में आती है,** आहाहा! आत्मा जाननेवाला है और जो ज्ञान क्रिया हुई जिसमें आत्मा जानने में आता है, ऐसा जो भेद, उस ज्ञान की पर्याय का भेद करो तो ज्ञेय है, अभेदरूप से तो आत्मा ही ज्ञाता और आत्मा ही ज्ञेय है। यह तो भेद से समझाते हैं. ज्ञान की पर्याय जानने में आती है, वह भी भेद किया इसलिये व्यवहार हो गया, सद्भूत व्यवहार અને અભેદ થઇને જો આત્મા જણાય તો નિશ્ચય થઇ ગયો. और अभेद होकर यदि आत्मा जानने में आये तो निश्चय हो गया। आत्मा ही ज्ञाता और आत्मा ही ज्ञेय। आत्मा ज्ञाता और यह ज्ञानक्रिया ज्ञेय ऐसा नहीं है। अब ऐसा नहीं है। पहले ऐसा है। राग ज्ञेय नहीं है अतः ज्ञान की क्रिया को ज्ञेय बनाया। अब कहते हैं कि वह ज्ञान की क्रिया भी मेरा ज्ञेय नहीं है।

मुमुक्षुः- उसे भी निकाल दिया।

उत्तरः- उसे भी निकाल दिया। मेरा आत्मा ही ज्ञाता और आत्मा ही ज्ञेय, अभेद।

मुमुक्षुः- अभेद-एकरूप।

उत्तरः- एकरूप-एकरूप। मैं ही ज्ञाता और मैं ही ज्ञेय। वही यह पाठ है ना? ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय आत्मा ही है। वही यह पाठ है।

अब आगे, ठीक है ? कल इतना खुलासा इसका नहीं आया था, अब आया है।

दया के परिणाम होते हैं। देखो, दया के परिणाम 'करता है' ऐसा नहीं लिखा है। साधक को

दया के परिणाम आते हैं, आते हैं, होते हैं, होने योग्य होते हैं।

मुमुक्षुः- करता नहीं है।

उत्तरः- उसे, उसे **दया के परिणाम होते हैं उन्हें जानने की क्रिया,** ज्ञानक्रिया, समझ गए ? उन्हें जाननेवाली ज्ञानक्रिया कि जो ज्ञानक्रिया आत्मा की है और आत्मा को ही जानती है। परन्तु वहाँ से शुरुआत की है कि **दया के परिणाम होते हैं उन्हें** जानने की क्रिया, ऐसा! व्यवहार के द्वारा परमार्थ में ले जाना है उन्हें। **क्रिया आत्मा की है।** दया के परिणाम की क्रिया आत्मा से नहीं होती, वह (बात) नहीं है। परन्तु दया जिसमें जानने में आती है ऐसी जो ज्ञान की पर्याय, उस ज्ञान की पर्याय में आत्मा जानने में आता है तो उसका नाम ज्ञान कहा जाता है। जो उस ज्ञान में आत्मा जानने में न आये तो-तो अज्ञान हो गया। ज्ञान की पर्याय किसे कहा जाता है?

मुमुक्षुः- जिसमें आत्मा जानने में आये।

उत्तरः- जिसमें आत्मा जानने में आये उसका नाम ज्ञान की पर्याय कहा जाता है। जिस ज्ञान में आत्मा जानने में न आये वह ज्ञान नहीं है परन्तु अज्ञान है, आहाहा! इस ज्ञान का स्वतंत्र दोष क्या?

मुमुक्षुः- हाँ ...ज्ञान जिसका है।

उत्तरः- ज्ञान जिसका है, उसे न जाने वह स्वतंत्र दोष हो गया ज्ञान का। वर्षों पहले, एक बाबूभाई थे झवेरी, उन्होंने प्रश्न किया घर आकर, पहली मुलाकात एकदम , कि स्वतंत्ररूप से, भाई! ज्ञान का दोष क्या, वह मुझे बताओ? मिथ्यात्व है इसलिये ज्ञान का अज्ञान हो गया ऐसा मैं नहीं पूछ रहा , आहाहा! स्वतंत्रतपने, निरपेक्षरूप से ज्ञान, ज्ञान की भूल क्या है? कि उस ज्ञान में आत्मा मुझे जानने में नहीं आता ऐसा भासित होता है, वह भूल है उसकी। **दया के परिणाम होते हैं उन्हें जाननेवाली क्रिया।**

मुमुक्षुः- बहुत अच्छी बात कही आपने। ज्ञान की स्वतंत्र भूल क्या है?

उत्तरः- स्वतंत्र भूल क्या है? यह प्रश्न आया था। आहाहा! पहली मुलाकात, बाबूभाई जवेरी की मेरे से , यहाँ कहीं शादी में बारात में आये होंगे। तो वैसे नाम तो प्रसिद्ध है ना? नाम तो प्रसिद्ध, गुरुदेव बहुत बार बोलते इसलिये प्रसिद्ध है, सभी में । तो आये, मिले दीवानपरा में, बापूजी बैठे थे। 'भाई! एक मेरा प्रश्न है।' 'बोलिये क्या प्रश्न है?' 'कि ज्ञान की स्वतंत्र भूल क्या ? यह बताओ मुझे।' कि जो ज्ञान आत्मा को जानता नहीं है, जानना छोड़ देता है, वह ज्ञान की स्वतंत्र भूल है। ज्ञान अज्ञान हो गया।

मुमुक्षुः- जिसका ज्ञान है उसे जानता नहीं और दूसरे को (जानने) जाता है वह अज्ञान है।

उत्तरः- जिसका ज्ञान है उसे जानता नहीं है उसका नाम अज्ञान। और जिसका ज्ञान नहीं है उसे जानने के लिये रुका , वह तो अज्ञान हो गया। वर्षों पहले की, बीस-पच्चीस वर्ष पहले की बात है।

मुमुक्षुः- कैसी भयंकर भूल है।

उत्तरः- भयंकर भूल है। कल आये थे वे (बाबूभाई). कल दोपहर में आये थे ना, उनके साथ माधुरी बहन आयी थी, डाक्टर, और फिर वे चले गये। मुझे तो उस वक्त कुछ स्मरण में नहीं था, परन्तु माधुरी बहन ने एक बात कही कि 'आपसे बाबूभाई ने वर्षों पहले यह बात पूछी थी न, आपने यह जवाब दिया था। बाबूभाई ने मुझसे आकर बात की थी। मुझे चोट लगी कि ओहो! ऐसा जवाब!' ज्ञान

की स्वतंत्ररूप से भूल, कि जो ज्ञान आत्मा को न जाने वह उसकी भूल! है आत्मा का ज्ञान। प्रकाश है सूर्य का और सूर्य ज्ञात नहीं होता ! प्रकाश मकान का तो नहीं है, वह तो सूर्य का है, तन्मय है। आहाहा!

मुमुक्षुः- और स्वतंत्र भूल ख्याल में आये न तो स्वतंत्रपने निकल जाती है।

उत्तरः- निकल जाती है। समाप्त-समाप्त !

मुमुक्षुः- और ख्याल आ जाए ना कि जिसका है उसे जानता नहीं है।

उत्तरः- जानता नहीं, यह मेरी भूल है। इसे जानने के लिए रुकता है, झूठा है, ज्ञान इसका नहीं है। आहाहा!

दया के परिणाम होते हैं होते हैं- यह लिखा है, हों! 'करता है' ऐसा नहीं लिखा। होता है, होने योग्य परिणाम तो साधक को भी दया, दान, करुणा, कोमलता के परिणाम होने योग्य, आने योग्य, आते हैं और जाते हैं । अब उन्हें साधक का ज्ञान जानता भी है, जाना हुआ प्रयोजनवान कहा है ना? तो स्वयं को जानते जानते वे जानने में आ जाते हैं। वे जानने में आते हैं, वास्तव में उनको जानता नहीं है। यह बात अपनी हो गई है, समझ गये? फिर भी वहाँ से शरुआत की।

दया के परिणाम होते हैं, उन्हें जानने की क्रिया अर्थात् ज्ञान की क्रिया **आत्मा की है।** दया के परिणाम आत्मा के नहीं हैं। परन्तु दया जिस ज्ञान में जानने में आती है वह ज्ञान की क्रिया आत्मा की है। क्योंकि उसके साथ अभेद है। ज्ञान की क्रिया आत्मा के साथ अभेद है और दया के परिणाम पुद्गल के साथ अभिन्न हैं। दया के परिणाम आत्मा का कर्म भी नहीं हैं और ज्ञान का ज्ञेय भी नहीं हैं।

दया के परिणाम होते हैं, उन्हें जानने की क्रिया आत्मा की है और वे इसके ज्ञेय हैं। आत्मा का ज्ञेय कौन? दया के परिणाम ज्ञेय नहीं हैं परन्तु दया जिसमें जानने में आती है , ज्ञान की पर्याय में, ज्ञान शब्द प्रयोग किया है। ज्ञान शब्द का प्रयोग किया उसमें तुम्हें समझ लेना चाहिये। जब 'ज्ञान' प्रयोग किया हो तब उसमें आत्मा जानने में आए तो उसका नाम ज्ञान कहलाता है। यदि आत्मा उसमें जानने में न आये तो ज्ञान नहीं कहलाता, अज्ञान कहलाता है। ज्ञान कहते ही समझ लेना कि तन्मय होकर आत्मा उसमें जानने में आ रहा है। ज्ञान की व्याख्या ही यह है। **आत्मा की है और वे इसके ज्ञेय हैं।** आत्मा ज्ञाता और आत्मा के परिणाम ज्ञान के ज्ञेय। परन्तु जो वह निमित्त है दया, वह ज्ञेय नहीं है।

मुमुक्षुः- क्योंकि वे आत्मा के परिणाम नहीं हैं।

उत्तरः- आत्मा के परिणाम नहीं हैं। इसलिये उसका ज्ञेय नहीं होता। ज्ञान और ज्ञेय अभेद होते हैं। ज्ञान और ज्ञेय की जाति एक होती है। आत्मा ज्ञान और दया के परिणाम ज्ञेय, जाति अलग है इसलिये (ज्ञेय) नहीं हैं , ऐसा! एक बार अपनी बात हुई थी। आ गई थी ना? हाँ!

मुमुक्षुः- ज्ञान-ज्ञेय में जाति भेद नहीं होता ।

उत्तरः- ज्ञान और ज्ञेय में जाति भेद नहीं होता। और दूसरी बात, तन्मय होकर जानता है , भिन्न रहकर नहीं जानता। आहाहा! अभिन्न रहकर जानता है , अभिन्न होकर जानता है। अभिन्न रहकर जानता है। आहाहा! ज्ञान और आत्मा तो एक वस्तु है, वह कोई भिन्न वस्तु नहीं है। समझ गये? और दया के परिणाम तो भिन्न हैं, आस्रव तत्त्व हैं वे कोई जीव तत्त्व नहीं हैं , जीव के परिणाम भी नहीं हैं ।

(जानने की क्रिया) आत्मा की है और वे इसके ज्ञेय हैं। आत्मा का ज्ञेय। दया के परिणाम ज्ञेय नहीं हैं।

मुमुक्षुः- परन्तु जो ज्ञान की पर्याय...

उत्तरः- हुई, जानने की क्रिया हुई कि जिसमें दया जानने में आती है और दयालु भगवान आत्मा भी जानने में आता है, ऐसे ! ऐसी जो ज्ञान की पर्याय, वह ज्ञान का ज्ञेय है, ऐसा! ऐसा ज्ञाता-ज्ञेय का भेद करो तो (भेद) है। आत्मा ज्ञाता और आत्मा की ज्ञान की पर्याय ज्ञेय। ऐसा यदि भेद करो तो है। अभेद करो तो वह भी नहीं है। तो- तो आत्मा ही ज्ञाता और आत्मा ही ज्ञेय। ज्ञान की पर्याय ज्ञेय (वह) निकल गया। उसका नाम निर्विकल्प अनुभव है। निर्विकल्प अनुभव में यह स्थिति होती है।

परन्तु, अब आगे, **परन्तु दया के परिणाम परमार्थ से आत्मा के नही हैं।** ज्ञान तो आत्मा का है। **परन्तु दया के परिणाम परमार्थ से** अर्थात् वास्तव में वे **आत्मा के नहीं हैं**, वे आत्मा के परिणाम ही नहीं हैं । **और परमार्थ से वे आत्मा के ज्ञेय भी नहीं हैं।** दया के परिणाम ज्ञेय नहीं हैं। दया जिसमें जानने में आती है ऐसी ज्ञान की पर्याय ज्ञान का ज्ञेय है, भेद की अपेक्षा से। अभेद की अपेक्षा से तो आत्मा ही ज्ञाता और आत्मा ही ज्ञेय। आहाहा! **दया के परिणाम परमार्थ से आत्मा के नहीं हैं।** वे आत्मा की चीज कहाँ हैं ? नहीं मिलते हुए भाव हैं। सामान्य के विशेष कहाँ हैं वे ? दया के परिणाम कहीं सामान्य के विशेष नहीं हैं। आहाहा!

और परमार्थ से वे आत्मा के ज्ञेय भी नहीं हैं । व्यवहारनय से भले उन्हें ज्ञेय कहा जाता हो, परन्तु निश्चयनय से देखने में आये तो वे ज्ञान के ज्ञेय ही नहीं हैं। कर्ता का कर्म तो नहीं हैं, कर्ता का कर्म तो दूर रहो, परन्तु ज्ञान के ज्ञेय भी नहीं हैं। तो ज्ञान का ज्ञेय क्या है ? कि ज्ञान की पर्याय ज्ञान का ज्ञेय है और आत्मा उसका ज्ञाता है। इतना भेद निकल जाये तो आत्मा ही ज्ञाता और आत्मा ही ज्ञेय, बस ! यह पैराग्राफ बहुत उत्कृष्ट है इसलिये जरा ज्यादा स्पष्टीकरण करते हैं एक की एक बात, तो बैठे, नहीं तो बैठती नहीं है जल्दी से।

अब किसी को लगे कि यह किस तरह का धर्म? भूखे को भोजन देना, प्यासे को पानी पिलाना, वस्त्रहीन को वस्त्र देना और बीमार की सेवा करना- ऐसी कोई बात तो समझ में आये। ऐसी धर्म की बात करो तो-तो समझ में आये। यह क्या लगाकर रखा है? यह ज्ञेय नहीं, यह कर्म नहीं और यह अभेदपने ज्ञेय और यह भेदपने ज्ञेय, यह क्या लगा रखा है? कोई ऐसी बात करे तो समझ में आये। बीमार को कुछ....

मुमुक्षुः- पहली बात तो हमेशा की, परन्तु कुछ उसका सार ही नहीं आया। अब यही बात करनी है।

उत्तरः- उसमें अंत नहीं आया संसार का। यह तो संसार के अंत की बात है। या बहन! ऐसा है, जिसका अंत आ रहा है अंतर से, उसे यह बात सुनने में आती है। सुनने में आने के बाद यदि अंदर से हकार आता हो तो समझ लेना कि अंत है इस जीव के (संसार का)। वर्तमान भावी का सूचक है। वर्तमान भविष्य का सूचक है कि अब यह जीव निकल जायेगा। अंदर से उसको हकार आता है ना, आहाहा! यह बात अंतर की है, अंतर की है। सहज वह स्वयं ही जानता है, दूसरा नहीं जान सकता।

स्वयं जान सकता है कि मुझे किसमें उल्लास आता है, अंदर में से।

अब किसी को ऐसा लगे कि भला यह कैसा धर्म? भूखे को भोजन देना, प्यासे को पानी पिलाना, वस्त्रहीन को कपड़े देना और बीमार की सेवा करना -ऐसी कोई बात तो समझ में आये। अरे भाई! ये तो सब राग की क्रियायें, बापू! अनंतबार तूने करी। और अनंतबार स्वर्ग में भी, स्वर्ग का देव हुआ अनंतबार, एक-दो बार नहीं। आहाहा! नारकी के भव से असंख्यात गुणे देव के भव किये क्योंकि पाप थोड़ा किया है और पुण्य ज्यादा किया है। अर्थात् पाप से तो नरक में गया परन्तु पुण्य बहुत किया, अनंतबार पुण्य किया, तो उसकी अपेक्षा असंख्यात गुने स्वर्ग के भव किये। परन्तु भव का अंत नहीं आया।

मुमुक्षुः- भव का छेद नहीं हुआ।

उत्तरः- भव का छेद नहीं हुआ। आहाहा!

ये तो सब राग की क्रियायें, बापू! उस काल में जड़ की क्रिया तो जड़ में होने योग्य हुई, वह क्रिया तेरी नहीं है, और राग की क्रिया भी तेरी नहीं है। आत्मा की नहीं? राग होता है, वह आत्मा का नहीं? आत्मा उसे करता नहीं है? ना, आहाहा! आत्मा का ज्ञान करता है, वह भी व्यवहार है। तो यह राग करता है वह तो अज्ञान में गया। वह व्यवहार भी नहीं है, वह तो अज्ञान में जाता है। आहाहा! **उस काल में जड़ की क्रिया तो जड़ में होने योग्य हुई, वह क्रिया तेरी नहीं है, और राग की क्रिया भी तेरी नहीं है। अरे! उस काल में राग का ज्ञान हुआ, राग का ज्ञान हुआ, वह ज्ञान राग का नहीं है।** दया के परिणाम का ज्ञान हुआ वह ज्ञान दया का नहीं है, राग का नहीं है, वह तो आत्मा का है ज्ञान। यदि राग का ज्ञान हो तो-तो ज्ञान रागरूप हो जाये।

मुमुक्षुः- रागरूप हो जाना चाहिये, बराबर है।

उत्तरः- तो राग का ज्ञान कहा जाए।

मुमुक्षुः- तो मानें कि राग का है।

उत्तरः- सही बात है। परन्तु राग का ज्ञान तो किसी को होता नहीं। राग का ज्ञान या शरीर का ज्ञान किसी को नहीं होता ।

मुमुक्षुः- तो तो ज्ञान को उसरूप हो जाना चाहिये।

उत्तरः- उसरूप हो जाना चाहिये। तो-तो शरीर का ज्ञान हो।

मुमुक्षुः- तो-तो हम कबूल करें

उत्तरः- कि छह द्रव्यों का ज्ञान हुआ, देव-गुरु-शास्त्र का ज्ञान हुआ। देव-गुरु-शास्त्र का ज्ञान कभी नहीं होता। आहाहा!

वह ज्ञान राग का नहीं है, राग उसमें घुसा नहीं है, ज्ञान में। आत्मज्ञान में (राग) **घुसा नहीं है,** आहाहा! **जानने की क्रिया तेरे अस्तित्व में हुई है वह तेरी है।** वह तेरी सत्ता में होती है, द्रव्य-गुण और पर्याय। तेरी सत्ता में पर्याय होती है, जिसमें आत्मा जानने में आता है वह तेरा अस्तित्व ही, होनापना उसमें। **और वह वस्तुतः तेरा ज्ञेय है।** ज्ञान की पर्याय तेरा ज्ञेय है, वह भी भेद की अपेक्षा से। सविकल्प में ज्ञेय है। ज्ञान की पर्याय सविकल्प में ज्ञान का ज्ञेय और निर्विकल्प ध्यान में आत्मा ही

ज्ञेय होता है। ज्ञान की पर्याय ज्ञेय नहीं होती। फिर स्वपरप्रकाशक की बात लेनी है। बहन ने आज सुबह कहा कि थोड़ा यह ले लेना। यह पूरा हो जाये तो बाद में ले लेंगे आहाहा!

जानने की क्रिया तेरे अस्तित्व में हुई है वह तेरी है, और वह वास्तव में तेरा ज्ञेय है, रागादि परमार्थ से तेरे ज्ञेय नहीं हैं। आहाहा! **समझ में आया?** यदि उसे तू ऐसा मानेगा कि मैं ज्ञाता और वह मेरा ज्ञेय तो तू कर्ता और वह तेरा कर्म हो जायेगा। ज्ञाता-ज्ञेय के नाम पर भी कर्ता-कर्म ही खड़ा होगा। राग को मैं जानता हूँ और मैं जाननेवाला और वह मेरा ज्ञेय ऐसा आया, तो वह जो जानता है वह कर्ता और जानने में जो आता है वह कर्ता का कर्म हो जायेगा।

मुमक्षु:- कर्म होगा। वह कर्म हो जायेगा। सही है।

उत्तर:- वह कर्म हो जायेगा.. इसलिये राग को जानना बंद कर दे। और आत्मा को जान न! आहाहा!

अज्ञानी जीवों को इतना सब (दया, दान आदि को) उल्लंघकर यहाँ (ज्ञानभाव में) आना बड़ा मेरू पर्वत उठाने जैसा लगता है। कि सभी क्रिया, समस्त व्यवहार का निषेध करोगे ? आहाहा! सभी क्रियाओं का निषेध करोगे तो आत्मा का क्या होगा? कि आत्मा में जायेगा, उसका हित हो जायेगा। विभाव क्रिया का निषेध तो करने जैसा है, संतो ने करवाया है। आहाहा! **परन्तु इसमें तेरा हित है भाई!** इसमें तेरा हित है, बापू! आहाहा! दया के परिणाम कर्ता के कर्म नहीं हैं और ज्ञान के ज्ञेय भी नहीं हैं। वह जानने लायक वस्तु नहीं है।

मुमुक्षु:- जानने लायक नहीं है।

उत्तर:- जानने लायक नहीं है- जानने लायक नहीं है, करने लायक तो है ही नही।

मुमुक्षु:- कहाँ बात ले जाते हैं!

मुमुक्षु:- वहाँ खड़ा ही नहीं रहता।

उत्तर:- अंदर में आ जाता है। वहाँ खड़ा नहीं रहता अब। अंदर में आ जाता है।

मुमुक्षु:- करने लायक तो दूर रहो परन्तु जानने लायक नहीं है।

उत्तर:- तो जानने लायक क्या है?

मुमुक्षु:- स्वयं।

उत्तर:- आ गया ना अंदर? बस! ऐसे ही अंदर (जाया जाता है)। जिसको अनुभव होता है इस रीति से ही होता है।

मुमुक्षु:- ऐसे ही होता है, सही है! बिलकुल सत्य बात है।

मुमुक्षु:- ये जो तीन दिन हुए, बात सुनी, ऐसा लगता है कि ऐसा ही है! ऐसा ही लगता है मुझे।

उत्तर:- अंदर से आता है, अंदर से आता है, आत्मा है ना?

मुमुक्षु:- बहुत अधिक विश्वास आता है।

उत्तर:- ऐसा? तुम्हें पता होगा। अकेले में बात करते हैं न ?

मुमुक्षु:- मुझे कहा था, मुझे कहा था, भली भांति याद है। **उत्तर:- अज्ञानी जीवों को इतना सब,** आहाहा! **(दया, दान आदि को) उल्लंघकर यहाँ आना बड़ा मेरू पर्वत उठाने जैसा लगता**

है। परन्तु इसमें तेरा हित है भाई! हमने जो बात की है, तेरे हित की बात की है।

अब कहते हैं- 'इसप्रकार आत्मा स्वयं से ही ज्ञात होने योग्य होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञेय है'। अभेद कर देते हैं , अब। **स्वयं ही** अर्थात् आत्मा ही, स्वयं अभेद आत्मा ही **ज्ञात होने योग्य** है अतः **ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञेयरूप है।** पर्याय ज्ञेयरूप नहीं है अब, निकाल दी। पर्याय ज्ञेयरूप थी, भेद से बात की थी ना, अब अभेद से बात करते हैं। क्योंकि पर्याय आत्मा की है और आत्मा के साथ अनन्य है. अतः परिणामी आत्मा ही ज्ञेय है। परिणाम ज्ञेय नहीं है, परिणाम को ज्ञेय कहना व्यवहार है। और परिणामी को ज्ञेय कहना निश्चय है। ज्ञान की पर्याय को ज्ञेय कहना व्यवहार है। और पर्याय परिणत पूरा आत्मा, जिस पर्याय में अभेदरूप से आत्मा जानने में आता है, ऐसा परिणामी आत्मा, वह ज्ञान का ज्ञेय है, निश्चय है। ज्ञान की पर्याय को ज्ञेय कहना वह व्यवहार, आहाहा! और परिणामी पूरे आत्मा को ज्ञान का ज्ञेय कहना वह निश्चय है।

मुमुक्षुः- अध्यात्म का व्यवहार।

उत्तरः- आहाहा!

ज्ञानमात्र भाव ही स्वयं का ज्ञेय है। तथा स्वयं ही स्वयं का जाननेवाला होने से स्वयं ही स्वयं का , पर का नहीं।

मुमुक्षुः- स्वयं का। पर की बात ही नहीं है।

उत्तरः- बात ही नहीं है, बस! अनंतकाल बिताया, अब इसमें आ जाओ। बस! तो काम हो जायेगा। बहन! तुम्हें कहा था; कि ज्ञानी के वचन पर अनन्य श्रद्धा रखकर उन्हें समझने की जो कोशिश करेगा, अनुभवी को, उसे अनुभव हो जायेगा। उसे समझने की कोशिश करनी चाहिये। वे क्या कहना चाहते हैं?

मुमुक्षुः- उनका भाव क्या है?

उत्तरः- उनका भाव क्या? कहने का आशय क्या है? अपना पक्ष और अपनी मान्यता एक तरफ रख दे, तो समझ में आये।

स्वयं ही स्वयं का जाननेवाला होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञाता है। वह ज्ञेय की व्याख्या की। अब ज्ञाता की व्याख्या की। **इसप्रकार ज्ञानमात्र भाव ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता- इन तीन भावों युक्त,** युक्त अर्थात् सहित, **सामान्य-विशेषरूप वस्तु है।** सामान्य-विशेषस्वरूप, द्रव्य, गुण और पर्याय से अभेद सम्पूर्ण आत्मा ज्ञान का ज्ञेय है। ज्ञाता भी वह, ज्ञेय भी वह और ज्ञान भी वह। भेद नहीं करना अब । भेद से समझाते हैं परन्तु अब भेद को समेटकर तुम अभेद में आ जाओ।

देखो, इस सब कथन का सारांश यह है कि- जानने योग्य परपदार्थ पर में ही रहते हैं। ज्ञात होने योग्य परपदार्थ पर में रह गये, इधर नहीं आये कहीं। **और जाननेवाला जाननेवाले में रहता है। जाननेवाला स्वयं ज्ञानरूप होता हुआ स्वयं को ही जानता है।** आहाहा! **जाननेवाला स्वयं ज्ञानरूप होता हुआ स्वयं को ही जानता है।** आहाहा! पर को नहीं। **इसप्रकार आत्मा स्वयं ही ज्ञात होने योग्य है; ज्ञानमात्र भाव ही स्वयं का ज्ञेय है**, अभेद। ज्ञानमात्र अर्थात् सम्पूर्ण आत्मा, सामान्य-विशेष, द्रव्य-गुण-पर्याय वाला। **परपदार्थों को ज्ञेय कहना तो व्यवहार है बस।** आहाहा!

तथा स्वयं ही स्वयं का जाननेवाला होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञाता है। ज्ञाता की व्याख्या। ज्ञाता किसको कहना? कि छह द्रव्यों को जाने, लोकालोक को जाने, वह ज्ञाता नहीं है। स्वयं स्वयं को जानता है इसलिये आत्मा का नाम ज्ञाता है। स्वयं ही ज्ञात होता है इसलिये स्वयं ज्ञेय है। आहाहा! ज्ञाता भी स्वयं, ज्ञेय भी स्वयं और ज्ञान भी स्वयं ही है। **आहाहा! पर के साथ परमार्थ से आत्मा का कोई संबंध नहीं है। जो जानने में आता है, वह भी स्वयं की दशा, जाननेवाला भी स्वयं और ज्ञान भी स्वयं ही है, आहाहा! ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय- तीनों एकरूप हैं।** हों! भेद नहीं। एकरूप आत्मा ही है। **अंतर में दृष्टि डालने पर ऐसे तीन भेद आत्मा के हैं, ऐसा रहता नहीं।** समझाने के लिये तीन भेद से समझाते हैं। परन्तु हम अनुभव में जाते हैं अंदर में तब ऐसे तीन भेद हमें दिखाई नहीं देते। यह भेद करके समझाते हैं तो हम दोष में आते हैं। वह हमें दोष, चारित्र का राग उत्पन्न होता है। विकल्प उत्पन्न होता है। थोड़ा भेद के लक्ष से, अभेद में भेद किया ना? तो इतना राग उत्पन्न होता है।

मुमुक्षुः- वह इन्द्रियज्ञान हुआ ना?

उत्तरः- इन्द्रियज्ञान बस! खड़ा हो गया इन्द्रियज्ञान।

मुमुक्षुः- विकल्पवाला ज्ञान हो गया।

उत्तरः- विकल्पवाला ज्ञान हो गया। फिर कहते हैं अभेद में जाते हैं तब तीन भेद दिखाई नहीं देते।

ऐसे तीन भेद आत्मा के हैं ऐसा रहता नहीं। परवस्तु ज्ञेय और स्वयं ज्ञाता वह बात तो कहीं दूर रह गई । आहाहा! क्या कहा? **परवस्तु ज्ञेय**, देव-गुरु-शास्त्र ज्ञेय, **और स्वयं ज्ञाता वह बात तो कहीं दूर रह गई।** दूर, आहाहा! हजारों मील दूर है। **स्वयं ही ज्ञेय, स्वयं ही ज्ञान, और स्वयं ही ज्ञाता - ऐसे तीन भेद भी अंतरदृष्टि में समाते नहीं हैं।** ये भी अनुभव में बाधक (है), अनुभव नहीं होता, आहाहा! **सभ अभेद एकरूप अनुभव होता है। सभ अभेद एकरूप अनुभव होता है। ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता तीनों का एकरूप** अनुभव होता है, आहाहा! यह आटा और यह शक्कर और यह घी ऐसे तीन भेद दिखाई नहीं देते। हलवा खाये ना, जब खाने बैठे, तब भेद दिखता है?

मुमुक्षुः- नहीं! वह तो आनंद लेता है। हलवा एकरूप दिखता है।

उत्तरः- एकरूप दिखता है। हलवा खाता हूँ। वह ऐसा नहीं कहता कि आटे को खाता हूँ और मीठे को चखता हूँ और घी का स्वाद लेता हूँ। ऐसे-ऐसे देखता है? उसमें तीन भेद हैं अवश्य! परन्तु तीन भेद को देखता नहीं है।

मुमुक्षुः- वह तो हलवे को खाता है। मैसूर को खाता है।

उत्तरः- हलवे को खाता है। मैसूर को खाता है।

मुमुक्षुः- आनंद आता है तब।

उत्तरः- आनंद आता है। उसमें आनंद आता है।

मुमुक्षुः- विचार करे तो आनंद नहीं आता।

उत्तरः- नहीं आता।

मुमुक्षुः- एकरूप स्वाद का आनंद ले रहा है।

उत्तरः- आहाहा! चमत्कारिक बात बाहर आई है। लायक जीव का काम हो जायेगा। असाधारण पुरुष हुए हैं। असाधारण पुरुष। मानो अपने लिये ही उन्होंने जन्म लिया हो, आहाहा! और उन्होंने जन्म लेने के बाद हमें, आहाहा! दूर-दूर से जैसे लोहचुंबक सुई को खींचता है वैसे हमें खींच लिया। संसार में से हमें खींच लिया। आहाहा! कोई लंदन थे, नैरोबी थे, कोई शिकोहाबाद, कोई वेरावल, आहाहा! कोई राजकोट थे, समझ गये! प्रवीणभाई ! सब खिंचते हैं ना, आहाहा! लोहचुंबक के पास सुई चली गई। जंग बिना की सुई खिंचती है, जंग वाली नहीं खिंचती।

मुमुक्षुः- जंग वाली नहीं खिंचती। जिसको जंग लगा हो वह नहीं खिंचती।

उत्तरः- अर्थात् जो निकटभवी हो, वह खिंचता है। ऐसा कहने का मेरा (आशय) है।

मुमुक्षुः- परम सत्य, परम सत्य।

उत्तरः- आहाहा! **इसका नाम धर्म है। सबका अभेद एकरूप अनुभव होता है। लो, इसका नाम धर्म है; जिसमें सामान्य और विशेष का अभेदपना प्राप्त- सिद्ध हुआ वह धर्म है।** आहाहा! जो पुरुष कहते हैं कि सामान्य को विशेष छूता नहीं है, जो पुरुष ऐसा कहते हैं कि ज्ञायक को निर्मल पर्याय स्पर्श करती नहीं है, विशेष छूता नहीं है। यह अव्यक्त के बोल में कहा कि पर्याय अड़ती नहीं है अतः अव्यक्त आत्मा रह गया। निर्मल पर्याय द्रव्य को अड़ती नहीं, स्पर्शती नहीं, वे पुरुष ऐसा कहते हैं, आहाहा ! देखो तो सही! ऊपर से देखने पर विरोध लगता है, परन्तु अविरोध है। ऐसा स्वरूप है। यह ज्ञेय का स्वरूप है। वह ध्येय का स्वरूप, यह ज्ञेय का स्वरूप। ध्येय में पर्याय अड़ती नहीं, सच्ची बात है। और ज्ञेय में अड़े बिना रहती नहीं। यह ज्ञेय का स्वरूप बताया ना सामान्य-विशेष? दोनों लिये ना? डंके की चोट पर पैंतालीस वर्षों तक कहा। निर्मल पर्याय अड़ती नहीं, प्रदेश भेद है, जा। अरे! और यह आप क्या कहते हो? यह यथार्थ है। यह ज्ञेय का स्वरूप है।

मुमुक्षुः- यह ज्ञेय है।

उत्तरः- यह ज्ञेय है। ऐसा ज्ञेय है।

मुमुक्षुः- वह ज्ञेय नहीं है। यह ज्ञेय है।

उत्तरः- यह ज्ञेय है।

मुमुक्षुः- ज्ञेय भी यह है।

उत्तरः- यह (ज्ञेय) है, राग तेरा ज्ञेय नहीं है।

सामान्यविशेष का अभेदपना प्राप्त-सिद्ध हुआ, वह धर्म है। यह **'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'** (मोक्षशास्त्र, प्रथम अध्याय, सूत्र १) यहाँ से शुरू होता है,

आहाहा! 'ऐसा ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ'- ऐसा अनुभव करनेवाला पुरुष यह अनुभव करता है कि ज्ञाता भी मैं हूँ, ज्ञान भी मैं हूँ और ज्ञेय भी मैं ही हूँ। ऐसे तीनों एक मैं- ऐसा जो ज्ञानमात्र भाव वह मैं हूँ। -ऐसा अनुभव करनेवाला पुरुष स्वयं का अनुभव करता है। ऐसा अनुभव होना ही धर्म है। आहाहा! धर्म सभी को करना है परन्तु आत्मा क्या इसका विचार नहीं करते। विपरीत विचार में लग जाते हैं।

'अनुभव' - अनु अर्थात् अनुसरण करके, भव अर्थात् भवन होना; आत्मा का, ज्ञानमात्र

वस्तु का - अनुसरण करके होना वह अनुभव है और वह धर्म है। इसके सिवाय राग का अनुसरण करके होनेरूप जो अनेक क्रियायें हैं वे सब संसार हैं, वह सब रण में पुकार लगाने जैसा है। कोई सुनेगा नहीं तुझे।

आहाहा! अनुभव करनेवाला पुरुष ऐसा अनुभव करता है कि, आहाहा! देखना अब हों ! क्लोजिंग (closing) में आया है अच्छा! **ज्ञाता भी मैं हूँ, ज्ञान भी मैं हूँ, और ज्ञात होने योग्य ज्ञेय भी मैं ही हूँ। इन तीनों के अभेद की दृष्टि होने पर उसे स्वानुभव प्रकट हुआ है और उसमें उसे अतीन्द्रिय आनंद के स्वाद का वेदन प्रकट होता है।** आनंद आया है इसमें। **इसे समकित और धर्म कहते हैं**। इसका नाम सम्यग्दर्शन है, अनुभव दशा का नाम।

देखो, यहाँ सामान्य-विशेष दोनों को एकसाथ लिया है, क्योंकि प्रमाणज्ञान कराना है। प्रमाणज्ञान में वस्तु त्रिकाली सत्, उसकी शक्तियाँ त्रिकाली सत्, और उसकी पर्याय, **वर्तमान पर्याय- इन तीनों को ही आत्मा कहा है। इसमें शरीर, मन, वाणी, कर्म और विकार इत्यादि नहीं आते।** वे तो बाहर में जाते हैं। उसमें नहीं आते। अभेद आत्मा में स्वयं के ज्ञान में, ज्ञानमय ही है, आहाहा! ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता तीनों में ज्ञान व्याप्त होता है, चेतना व्याप्त होती है तीनों में, वह अभेद एकरूप है। अनुभव उसका नाम सम्यग्दर्शन है, आहाहा! लो! पूरा हो गया। कितने? चार दिन चला? चार दिन या पाँच दिन?

मुमुक्षु:- चार दिन।

उत्तर:- चार दिन, १० पेज।

मुमुक्षु:- सभी को ऐसा लगता है कि क्यों होता नहीं है? अपन ऐसा कहते हैं कि मैं इतना सारा अभ्यास करता हूँ फिर भी क्यों होता नहीं है? परन्तु सच्चे मार्ग पर ही नहीं हो तो कहाँ से हो ?

उत्तर:- गलत मार्ग हो, उसमें अनुभव कहाँ से आये ? श्रद्धा झूठी है, ज्ञान झूठा है।

मुमुक्षु:- श्रद्धा में भूल है।

उत्तर:- भूल है।

अब एक बहन ने सवेरे एक प्रश्न किया। प्रश्न यानी यह चर्चा करने जैसा है ऐसा उन्हें लगा। मैंने कहा, क्या? तो (बहन ने) कहा, स्वपरप्रकाशक के बारे में थोड़ी बात करना। 'स्वपरप्रकाशक' इसके विषय में बहुत भ्रान्ति चलती है। इसके नाम से ,'स्वपरप्रकाशक ' इसके नाम से एक भ्रान्ति रह जाती है, जो सूक्ष्म है। अभ्यासियों की भूल होती है, स्वपरप्रकाशक में। स्वपरप्रकाशक है, वह व्यवहार है। स्व अपना आत्मा जानने में आता है और पर भी जानने में आता है, ऐसे पर को मिलाये तो प्रमाणज्ञान, ज्ञान की पर्याय का प्रमाण, ज्ञान की पर्याय का, हों!

द्रव्य में पर्याय को मिलाये तो द्रव्य का प्रमाण। परन्तु ज्ञान की पर्याय में स्व भी जानने में आता है और पर भी जानने में आता है , इसप्रकार मिलाये तो ज्ञान की पर्याय का प्रमाण। वह प्रमाण है ना, वह व्यवहार है। उस व्यवहार में से निश्चय निकालना चाहिये। स्वपरप्रकाशक है अवश्य, स्व का प्रतिभास होता है और पर का प्रतिभास होता है। दर्पण में जैसे दोनों का प्रतिभास होता है, वैसे ज्ञान की पर्याय स्वच्छ है और उसमें ज्ञायक का भी प्रतिभास होता है और देहादि रागादि का भी प्रतिभास तो

होता है। समझ गये? ऐसा स्वपरप्रकाशकपना है अवश्य, ज्ञान की पर्याय का। आत्मा में स्वपरप्रकाशक नहीं है, वह तो निष्क्रिय है।

किन्तु ज्ञान की पर्याय में स्वपरप्रकाशकपना है, है तो बंध और मोक्षमार्ग सिद्ध हुआ। स्व और पर दोनों का प्रतिभास होता है तो ही मिथ्यात्व और तो ही सम्यग्दर्शन सिद्ध होता है। किस तरह से? कि ज्ञान की पर्याय में रागादि और देहादि जानने में आते हैं। और जानकर कहे कि ये मेरे (हैं) , तो बंध मार्ग। अब यदि ज्ञान की पर्याय में देहादि जानने में आयें ही नहीं, तो ममता होवे नहीं। इसलिए ज्ञात होते हैं यह हकीकत है। जानने में नहीं आते, ऐसा नहीं। जानने में आते हैं , प्रतिभास होता है। तो उसे जानते ही, ज्ञान में राग को जानते ही मैं रागी, ज्ञान में दुःख को जानते ही मैं दुःखी, ज्ञान में देह को जानने पर 'मैं देही', ज्ञान में मनुष्य की पर्याय ज्ञात होने पर 'मैं मनुष्य'। इसप्रकार स्वपरप्रकाशक में से वह पर के प्रतिभास को उपयोगात्मक करता है और स्व के प्रतिभास को तिरोभूत कर देता है। जानने में तो दोनों आते हैं , दोनों जानने में आते हैं एक समय में हों! परन्तु एक समय में दो का उपयोग नहीं होता।

मुमुक्षुः- उपयोग एक का होता है।

उत्तरः- जानने में दोनों आते हैं। अब यदि उस उपयोग में ऐसा आये मुझे कि, आहाहा! यह देह जानने में आता है वह मेरा, राग जानने में आता है तो मेरा। जो पर वस्तु ज्ञात होती है, उसमें मेरापना करे तो मिथ्यात्व -अज्ञान हो जाता है। अब, इस स्वपरप्रकाशक में, शास्त्रकार और ज्ञानी ऐसा कहते हैं कि तेरे ज्ञान में अकेला देह कहाँ जानने में आता है? तेरे ज्ञान में तो ज्ञायक जानने में आता है। उसे ले ना, उसमें 'मैं' पना कर ना! इस देह में 'मैं' पना और मेरापना कहाँ करने लगा? कि साहिब! कि हाँ, स्वपरप्रकाशक है इसलिये आत्मा जानने में आता है। एकांत परप्रकाशक नहीं है। तेरे ज्ञान में तेरा, बालगोपाल सभी को भगवान आत्मा जानने में आ रहा है। ऐसा? मुझे जानने में आ रहा है ? कि हाँ, जानने में आ रहा है। जानने में आ रहा है ना, इसलिये जानने में आ जायेगा। जानने में न आ रहा हो तो जानने में नहीं आयेगा। तब वापस मुड़ता है वह, कि यह (पर) मेरे ज्ञान का ज्ञेय नहीं है। मेरे ज्ञान में तो मेरा आत्मा जानने में आता है। देखो अब, जब वह उपयोग पर तरफ से हटा, हट गया, इन्द्रियज्ञान गया, समझ गये? और उस ज्ञान उपयोग में ज्ञायक जानने में आता है। फिर ज्ञान उपयोग में ज्ञायक ही जानने में आता है, वही मैं हूँ , तो उसमें शुद्धोपयोग हो जाता है। तो उसमें उस समय उसे परप्रकाशक मिट गया। परप्रकाशक कहाँ रहा उस समय? पर कहाँ जानने में आता है? उपयोग अंदर में गया ना? अकेला आत्मा जानने में आता है। तो ऐसे स्वप्रकाशक ज्ञान में अनुभव होता है। अनुभव होता है निर्विकल्प ध्यान में।

अब, उस स्वप्रकाशक से अनुभव हुआ वह कारण, और अंदर में स्वपरप्रकाशक का ज्ञान हुआ। स्वपरप्रकाशक क्या ? कि ज्ञान ने ज्ञान को जाना और ज्ञान ने आनंद को भी जाना। यह अंदर का स्वपरप्रकाशक प्रकट हुआ, वह कार्य। वह कारण और यह कार्य। ऐसा निर्विकल्प ध्यान में स्वप्रकाशक पूर्वक स्वपरप्रकाशक, ये दोनों निश्चय। स्वप्रकाशक भी निश्चय और स्वपरप्रकाशक भी निश्चय। व्यवहार नहीं है, निश्चय है। क्योंकि एक आत्मा आश्रित है, उसमें दूसरे को मिलाया नहीं है

हमने।

मुमुक्षुः- दूसरे की अपेक्षा नहीं है।

उत्तरः- (दूसरे की) अपेक्षा नहीं है। आत्मा ही है। समझ गये? ज्ञान को जानता है तो भी आत्मा और आनंद भी आत्मा। तो अंदर स्वपरप्रकाशक एक नया प्रगट होता है। अनंतकाल से यह स्वपरप्रकाशक प्रगट नहीं हुआ है। कार्य प्रगट नहीं हुआ क्योंकि कारण में आया नहीं इसलिये कार्य प्रगट होता नहीं है। उसे कारण पकड़ना चाहिए कि मुझे जाननहार जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता। मुझे आनंद भी जानने में नहीं आता, क्योंकि वह पर्याय है। पर्याय को जानना मेरा धर्म नहीं है, इतना निषेध अंदर में आये तब सामान्य की तरफ उपयोग मुड़ जाता है। अनुभव होता है, और उसी समय आनंद जानने में आये बिना रहता नहीं है।

मुमुक्षुः- उसी समय?

उत्तरः- एक ही समय है।

मुमुक्षुः- समय एक।

उत्तरः- समय एक। सामान्य को जब जानता है तब सामान्य-विशेष दोनों जानने में आ जाते हैं।

ॐ